



विज्ञापन और स्त्री

डॉ. विवेक कुमार जायसवाल

सहायक प्राध्यापक, संचार एवं पत्रकारिता विभाग

डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म. प्र.)

प्रस्तावना-

विज्ञापन और स्त्री के संबंधों को समझने के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाना होगा। आमतौर पर जब विज्ञापन और स्त्री पर बात की जाती है तो जेहन में सबसे पहले यही बात आती है कि विज्ञापन में स्त्री को किस प्रकार दिखाया जाता है? विज्ञापन में स्त्री के प्रस्तुतीकरण पर बहस हमेशा से ही चली आ रही है लेकिन, विज्ञापन और स्त्री का संबंध प्रस्तुतीकरण के अतिरिक्त भी कई मायनों में है, जिसे समझना आज के समय में और महत्त्वपूर्ण हो जाता है। विज्ञापन के संबंध में पहले यह जान लेना आवश्यक है कि विज्ञापन कोई नया आविष्कार नहीं है। धरती पर सार्वजनिक उपयोग के लिए वस्तु-उत्पादन की प्रक्रिया जब से शुरू हुई है, विज्ञापन का उदय भी वहीं से माना जा सकता है। विज्ञापन के तरीके समय-सापेक्ष और उत्पाद-सापेक्ष हो सकते हैं लेकिन विज्ञापन-प्रणाली हमेशा से ही मौजूद रही है।

विज्ञापन का संबंध सीधे तौर पर जनमाध्यमों से भी है क्योंकि इसके बिना विज्ञापन का कोई वजूद नहीं है। आरंभिक दौर में विज्ञापन का प्रसारण मुद्रित माध्यमों (अखबार, पत्रिकाएं आदि) के जरिए ही होता था। इस दौर के विज्ञापनों में भी स्त्री मौजूद थी, लेकिन इसका स्वरूप अलग था और विज्ञापन से स्त्री के संबंधों के आयाम सीमित थे। विज्ञापन और स्त्री के संबंध बहुआयामी रूप में विकसित और स्थापित करने में अनेक कारक सहायक रहे हैं। विज्ञापन और स्त्री का संबंध सार्वभौमिक रहा है। कहने का आशय यह कि यह संबंध किसी स्थान विशेष के लिए अलग नहीं रहा है बल्कि यह ग्लोबल (वैश्विक) रहा है और आज भी है।

वैश्वीकरण, विज्ञापन और स्त्री-

ग्लोबल स्तर पर विज्ञापन और स्त्री के बहुआयामी संबंधों की पड़ताल के लिए बीसवीं सदी के नवें दशक को प्रस्थान बिंदु मानना ज्यादा समीचीन होगा। यह समय वैश्विक इतिहास के साथ ही विशेष रूप से भारतीय इतिहास के लिए खासा महत्त्व का रहा है। यह एक ऐसा समय था जब भारत समेत समूचा विश्व एक नई वैश्विक परिकल्पना के साथ तैयार खड़ा था और उसमें प्रवेश करने के लिए व्याकुल था। हालांकि पश्चिम में इस व्याकुलता का सूत्रपात पहले ही हो चुका था और वह नई दुनिया में प्रवेश भी कर चुका था। भारत सहित तीसरी दुनिया के तमाम देशों पर इसका असर पड़ना स्वाभाविक था और धीरे-धीरे वे एक नई दुनिया का हिस्सा बनने लगे। इतिहास में यह परिघटना भूमंडलीकरण के नाम से जानी जाती है।

नई दुनिया में प्रवेश के साथ सारी चीजों का फिर से नवीनीकरण होना लाजिमी था। केवल पुरुष और स्त्री जैविक रूप से नहीं बदले, बाकी सारी चीजों का नवीनीकरण इस परिघटना के उपरांत होना शुरू हो गया। खान-पान बदला, रहन-सहन बदला, मानवीय संबंध बदले, मानसिकताएं बदलीं, बोली-भाषा, आचार-व्यवहार, वेश-भूषा, चाल-ढाल और न जाने क्या-क्या। मानव संस्कृति में तो परिवर्तन के लक्षण दिखाई पड़ने लगे लेकिन इससे ज्यादा युगांतकारी परिवर्तन राज्य और उसकी नीतियों में हुआ और इन दोनों के ही सहचर्य से ही एक नए समाज की परिकल्पना को मूर्त रूप ग्रहण करने में बल मिला।



यह एक ऐसा दौर था जब नई आर्थिक नीतियों का प्रवेश हुआ और रणनीतिक स्तर पर राज्य द्वारा विदेशी पूंजी के प्रवेश के लिए द्वार खोल दिए गए। उदारिकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण तीनों के समागम ने हर क्षेत्र में अपना असर दिखाया। विदेशी पूंजी का प्रवेश, औद्योगीकरण, उत्पादन, बाजार, उपभोक्ता वर्ग तैयार करना, मुनाफा कमाने की हवस और अंततः पूंजी और समाज पर एकाधिकार, क्रमशः ऐसी प्रक्रिया का हिस्सा बने जिनसे अछूता रहना समाज को न तो स्वीकार्य था और समाज चाहकर भी इनसे अछूता नहीं रह सकता था। समाज पर एकाधिकार के लिए आवश्यक था - समाज के बीच पहुंच बनाना और अपने अनुकूल वातावरण और जनमानस तैयार करना। इस काम को करने का जिम्मा संभाला जनमाध्यमों ने। बढ़ते औद्योगीकरण से जनमाध्यमों के विकास में तेजी आने लगी। जनमाध्यमों के विकास के साथ-साथ नई सूचना तकनीकें विकसित हुईं। इन सूचना तकनीकों की खास खासियत यह थी या यह है कि किसी भी सूचना को अनगिनत लोगों के बीच बहुत ही कम समय में पहुंचाया जा सकता है। विज्ञापन, दरअसल यहीं से और अधिक प्रभावशाली स्वरूप धारण कर लेता है।

औद्योगीकरण, पूंजी और नई सूचना तकनीक ने विज्ञापनों के जरिए उपभोक्ता संस्कृति का सृजन किया। वैश्विक स्तर पर जनमाध्यमों के जरिए विज्ञापनों के प्रसारण ने एक ऐसा वर्ग तैयार किया जो नवधनाढ्य था और जो भी कुछ वह विज्ञापनों के जरिए देखता-सुनता था उसे जल्द से जल्द हासिल करना चाहता था। इस उपभोक्तावादी संस्कृति में एक नया पक्ष यह उभरकर आया कि लोग 'ब्रांडेड' चीजों की

तरफ ज्यादा आकर्षित होने लगे। अतीत में किसी उत्पाद की बाजार में स्वीकृति की प्रक्रिया में उपभोक्ता का हस्तक्षेप संभव था | यानि किसी 'ब्रांड' को जब उपभोक्ता महत्व देता था तभी वह एक स्थापित 'ब्रांड' के रूप में स्वयं को स्थापित कर पाता था। लेकिन आज स्थिति इसके उलट है। कंपनियाँ आर्थिक ताकत के बल पर विज्ञापनों के जरिए अपने 'ब्रांड' स्थापित करने का काम कर रही हैं। स्थिति यह है कि जल जैसे प्राकृतिक संसाधन को भी अधिकृत कर बोटल में भरकर उसे कंपनी के 'ब्रांड' के रूप में प्रचारित किया जा रहा है। यह प्रकृति का बाजारीकरण है। भूमंडलीय उपभोक्तावादी संस्कृति और अर्थव्यवस्था में माल की गुणवत्ता महत्वपूर्ण नहीं रह गई है। माल की गुणवत्ता से उपभोक्ता का ध्यान हटकर माल के 'ब्रांड' में केंद्रित हो गया है।

ब्रांड, उपभोग की संस्कृति और स्त्री-

हम जानते हैं कि उपभोक्तावाद का सबसे सशक्त माध्यम है विज्ञापन। विज्ञापन के जरिए उपभोक्ताओं के मानस को इस बात के लिए तैयार किया जाता है कि अमुक वस्तु का वर्तमान समय में प्रचलन है और इसका संग्रहण अति आवश्यक है। कहने का आशय यह कि उपभोक्तावादी वस्तुओं की तरफ आकर्षित करने और क्रय करने के लिए प्रोत्साहन का काम भी विज्ञापन बहुत ही तार्किक ढंग से करते हैं। उपभोक्तावाद का जो अंतिम लक्ष्य या परिणति है- जिंसीकरण यानी वस्तुवाद, उसे तर्कों के जरिए को स्थापित करने का काम विज्ञापन करते हैं। अपने इस लक्ष्य में वे सफल इसलिए भी हैं क्योंकि जीवन की वास्तविक जरूरतों को तो पूरा करना किसी भी सभ्य समाज का पहला उद्देश्य उद्देश्य माना जाता है।

महत्वपूर्ण सवाल यहाँ यह है कि इस उपभोक्तावादी संस्कृति में विज्ञापन और स्त्री के संबंधों को किस प्रकार व्याख्यायित किया जाए? फौरी तौर पर विज्ञापन और स्त्री के संबंध मुख्यतः दो रूपों में दिखाई देते हैं। पहला, उत्पाद के उपभोक्ता के रूप में और दूसरा, उत्पाद के प्रचारक के रूप में। उपभोक्ता के रूप में विज्ञापन और स्त्री की संबंधों को हम कुछ उदाहरणों के जरिए बेहतर ढंग से समझ सकते हैं। स्त्री उपभोक्ता किसी विशेष 'ब्रांड' को इसलिए खरीदती हैं क्योंकि उसे उसकी गुणवत्ता पर ज्यादा विश्वास होता है। 'ब्रांड' स्त्री को आश्चर्य करता है। एक स्त्री बर्तन साफ करने का साबुन 'विम बार' ही क्यों खरीदेगी और इसके बदले दूसरा 'ब्रांड' क्यों नहीं। कोई स्त्री एक्वाफिना बोटल बंद पानी ही क्यों खरीदती है दूसरा 'ब्रांड' क्यों नहीं। दरअसल इस चुनाव के पीछे उपभोक्ता स्त्रियों के अपने-अपने कारण मौजूद हैं।

'ब्रांड' मनुष्य की सांस्कृतिक पहचान के वाहक बन चुके हैं। लैंगिक संबंधों पर उपभोक्ता संस्कृति का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा है। स्त्री की अपनी मांग तथा दूसरे लोग उसे किस रूप में देखते हैं यह सब उस स्त्री के पहनावे पर, उसके जूते, बैग, गहने, मकान और उसकी जीवन शैली पर निर्भर करता है। वह किस गाड़ी पर बैठी है इससे उसकी पहचान बनती है। और किसी स्त्री की पहचान बदलने और विकसित करने में 'ब्रांड' सहायक होता है। स्त्री द्वारा किया गया चुनाव चाहे जैसा हो लेकिन 'ब्रांड' के माध्यम से स्त्री स्वयं का पुनः आविष्कार करती है। पहचान का अर्थ - 'हम कौन हैं' से नहीं है बल्कि पहचान का अर्थ आज यहाँ है कि सामाजिक संदर्भ में हम कहाँ स्थित हैं? दुनिया या अन्य लोगों के बरक्स हमारी स्थिति और हमारी हैसियत क्या है? स्त्री की पहचान बनने का जो पारंपरिक ढांचा था जैसे-परिवार, सामाजिक वर्ग एवं धर्म आदि का चुनाव स्त्री ने नहीं किया। वह दिए गए ढांचे से अपनी पहचान बनाने की तरफ बढ़ती जा रही है। आज व्यक्तिगत चुनाव की सुविधा के कारण उत्तर आधुनिक युग में स्त्री चुनाव करती हुई नजर आ रही है। उसकी पहचान में लचीलापन उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण आया है। अतः, 'ब्रांड' से स्त्री के चरित्र, व्यक्तित्व और उसकी पहचान का पता चलता है। इससे स्त्री का मूल्यबोध, उसकी आस्था का पता चलता है। कोई भी स्त्री जब किसी विशेष 'ब्रांड' का चुनाव करती है तो उसकी अपेक्षा होती है कि इसके बारे में दूसरों को भी पता चले। यदि उसने साधारण दर्जी का सिला हुआ सलवार सूट न पहनाकर ऋतु कुमार या सव्यसाची का सूट पहना हुआ है, यदि गुच्ची का पर्स झाला हुआ है और 'सोरोस्की' की चूड़ियाँ पहनी है तो क्षणों में उसकी पहचान विशिष्ट बन जाएगी। लिंग, चरित्र, दृष्टिकोण, विचारधारा, सामाजिक हैसियत, जीवन जीने का तरीका सब कुछ 'ब्रांड' पर आधारित है। बाजार की यह एक स्वाभाविक गति है जिसे मोड़ने में व्यक्ति असमर्थ रहा है। उपभोक्ता के हैसियत में वह जानती है कि वह जो कुछ भी खरीद रही है उससे दूसरों को उसके बारे में पता चलेगा। यहाँ 'ब्रांड' पहचान को स्थापित करने वाला सक्रिय एजेंट के रूप में अपना परिचय देता है जो कि उत्पाद की गुणवत्ता से और कार्यक्षमता से बिलकुल अलग एक भिन्न अस्तित्व है। 'ब्रांड' की यही सक्रियता हमें चुनाव करने को प्रेरित करती है। अपनी पहचान को स्थापित करना एक प्रकार की आंतरिक प्रक्रिया है और दूसरी ओर जब यह चुनाव अभिव्यक्त होता है तो इससे व्यक्ति का परिचय मिलता है। आधुनिक जीवनशैली की तेजगति के कारण स्त्री ऐसी वस्तु का चुनाव करना चाहेगी जिससे उसकी हैसियत का परिचय मिले। कुल मिलाकर 'ब्रांड' स्त्री की पहचान का एकमात्र निर्धारक तत्व है जो सामाजिक बाजार में उसका परिचय दे रहा है। 'ब्रांड' अपनी उपभोक्ता की छवि को निर्मित करते हैं। आज ऐसे हजारों 'ब्रांड' जो किसी भी स्त्री को स्थापित करने का वादा करते हैं। जाहिर है कि यदि वह आधुनिका है, बड़े घर की है तो वह इसका प्रचार और प्रदर्शन करना चाहेगी।

विज्ञापनों में उत्पाद के प्रचारक के रूप में स्त्री के प्रस्तुतीकरण का पक्ष भी विज्ञापन और स्त्री के संबंधों को व्याख्यायित करने के लिहाज से काफी महत्वपूर्ण है। स्त्री किसी ऐसे उत्पाद का प्रचार करे जिसकी वह स्वयं उपभोक्ता भी हो, तो यह बात समझ में आती है। लेकिन, आधुनिक विज्ञापनों का जो दौर है उसमें अकसर ऐसे विज्ञापनों से साक्षात्कार होता है जिनसे स्त्रियों का कोई लेना-देना नहीं है लेकिन वे उत्पाद के प्रचारक के रूप में मुख्य भूमिका में दिखाई देती हैं। पुरुषों के उपयोग के डियो, सेविंग क्रीम, लोशन, अंडरगारमेंट्स आदि के प्रचार में सिद्धांततः स्त्री की कोई भूमिका नहीं हानी चाहिए थी लेकिन, इन उत्पादों के प्रचार में स्त्री, पुरुष के समानांतर ही मुख्य भूमिका में नजर आती है। विज्ञापन में स्त्रियों के प्रस्तुतीकरण का केवल यही एक पक्ष नहीं है। आज हर उत्पाद के प्रचार में स्त्री शरीर का अताकिक नग्न प्रदर्शन, हर उत्पाद के प्रचार में स्त्रियों को शारीरिक रूप से संतुष्ट रखे जाने पर बल देते हुए पुरुषार्थ से भरे हुए संवाद स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। कहने का आशय यह कि विज्ञापन उद्योग को स्त्रियों से इस कदर 'मोह' है कि वे अपने हर उपक्रमों में स्त्री को हर तरीके से संतुष्ट दिखाए जाने की वकालत करते हैं।

बहुराष्ट्रीय विज्ञापन कंपनियों आज जिस तत्व का सबसे ज्यादा इस्तेमाल कर रही हैं वह है- कामुकता। कंपनियों ने समाज में आम तौर पर व्याप्त कामेच्छा के दमन के कारण पैदा हुई रिक्तता का इस्तेमाल कर विज्ञापनों के जरिए उसकी पूर्ति के संसाधन के रूप में विकसित करने का काम किया। इस तरह से ग्राहक को संतुष्टि मिलती है और उत्पाद की बिक्री में बढ़ोत्तरी होती है। इस प्रकार कामेच्छा का भी वस्तुकरण किया जा रहा है। माल का सेक्सुअलाइजेशन लोगों की हिस्सेदारी को बढ़ाता है और दमित कामेच्छा को आधार प्रदान करता है। इससे मांग और आपूर्ति बढ़ती है। कामुकता के रूपायन के लिए पुरुष और स्त्री दोनों का इस्तेमाल किया जा रहा है।

विज्ञापनों में किए जा रहे स्त्री-प्रस्तुतीकरण का स्वरूप वास्तव में वैसा नहीं होता जैसा दिखाया जाता है। विज्ञापन जैसे स्त्री को प्रोजेक्ट करता है, उसकी वास्तविक स्थिति समाज में वैसी नहीं होती। वह स्त्री का स्टीरियोटाइप है। अनेक आलोचनात्मक व्याख्याओं में विज्ञापन में स्त्री-प्रस्तुतीकरण को लेकर तमाम चीजें उभरकर सामने आई हैं। जैसे - विज्ञापन में स्त्री शरीर की फोटोग्राफिक निर्मितियां। जिसमें फोकस स्त्री के समूचे शरीर के बजाए उसके अंग पर होता है। स्त्री शरीर की खंडित प्रस्तुति होती है जैसे - उनके हाथों, पैरों, आंखों, स्तनों अथवा हाथों की। यह जो खंडित है दरअसल वह समग्र है। मतलब यह खंडित प्रदर्शन एक कामुक स्त्री की छवि का निर्माण करता है। जबकि पुरुष की खंडित छवि का प्रदर्शन नहीं किया जाता। विज्ञापनों में स्त्री छवि के साथ इस तरह का व्यवहार आम है और यह स्त्री को अमानवीय और वस्तु रूप में प्रस्तुत करता है जो कि उस व्यक्ति के प्रति हिंसा करने को वैध बनाता है। यह समाज में स्त्री के प्रति मौजूद हिंसात्मक व्यवहार को और भी पुख्ता करता है।

विज्ञापन और स्त्री देह-

विज्ञापनों में स्त्री को लेकर कुछ ऐसी चीजें पेश की जाती हैं जिसे सार्वभौमिक सत्य के रूप में स्थापित करते हुए दिखाया जाता है। भोलापन स्त्री का प्राकृतिक गुण माना जाता रहा है। उसके इस गुण का प्रदर्शन इस रूप में किया जाता है कि भोलापन सेक्सी होता है। यह धारणा स्त्री छवि को और ज्यादा कामुक बनाने पर जोर देती है। बहुधा विज्ञापनों में खाने की चीजों से स्त्री-प्रेम का प्रदर्शन किया जाता है। यह प्रदर्शन इस रूप में किया जाता है जिससे यह धारणा पैदा हो कि स्त्री हमेशा भूखी रहती है। इस भूख का संबंध सेक्स से किसी न किसी रूप में जोड़कर दिखाया जाता है। चॉकलेट और पिज्जा इत्यादि के विज्ञापनों में स्त्री के खाने के स्टाइल में इस अप्रत्यक्ष प्रदर्शन को आमतौर पर देखा जा सकता है। विज्ञापनों में निरंतर गोरी औरत के घरेलूकरण का आदर्श आख्यान काली औरत को साथ रखकर पूरा किया जाता है। जिसे पूरी तरह विरोधाभास के साथ दिखाया जाता है, पूर्व औद्योगिक युग की तकनीक और घर की बनी चीजों के साथ। यह स्थापित किया जाता है कि गोरी औरत काली औरत के पालतू/घरेलू होने की तुलना में आदर्श घरेलूकृत उपभोक्ता होती है।

विज्ञापन में स्त्री के ऐंद्रिक छवियों का इस्तेमाल भी इधर काफी बढ़ा है। स्त्री की आदर्श खूबसूरत देह को किसी वस्तु की खूबसूरती के साथ जोड़कर देखने की दृष्टि आम है। सांस्कृतिक रूप से स्वाभाविक है। इसमें वस्तु और स्त्री की खूबसूरत देह के बीच एक स्वैच्छिक संबंध बनाया जाता है। स्त्री की खूबसूरत देह एक सांस्कृतिक कोड है जिसका किसी भी वस्तु की सुंदरता बताने के लिए खूब इस्तेमाल किया जा रहा है। चाहे वह शराब का विज्ञापन हो, स्कूटर का विज्ञापन हो, या शेविंग क्रीम का, सबमें स्त्री की छवि का इस्तेमाल हो रहा है। स्त्री की छवि का ऐंद्रिक इस्तेमाल वस्तु की बिक्री की गारंटी नहीं बन सकता जब तक कि उसे दूसरी वस्तु के विज्ञापन में इस्तेमाल स्त्री की ऐंद्रिक छवि से अलगया न जाए। सिगरेट और शराब के विज्ञापनों में इस अंतर को देखा जा सकता है। दोनों ही नशे की वस्तुएं हैं और खास वर्ग के लिए हैं लेकिन दोनों में स्त्री की ऐंद्रिक छवि का इस्तेमाल एक जैसा नहीं है।

विज्ञापन और स्त्री उपभोक्ता और स्त्री प्रस्तुतीकरण के संबंधों को एक अन्य नजरिए से भी देखा जाना चाहिए। तीसरी धारा का नारीवाद इस संबंध की आधारभूमि है। जैसा कि हम पूर्व में जान चुके हैं कि १९९० के दशक के आस-पास पूरी दुनिया में नए-नए बदलाव हो रहे थे और नई आकांक्षा और नई परिकल्पना के साथ नई दुनिया कायम करने के लिए बेताब था। इसी दौर में ही नारीवाद की एक नई धारा की शुरुआत हुई जिसे तीसरी धारा के नारीवाद के नाम से जाना जाता है। इस धारा का मुख्य उद्देश्य इस लक्ष्य की प्राप्ति में था कि स्त्रियों को अब 'स्व' की जरूरत है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आत्मनिर्भरता, स्वतंत्रता, उन्मुक्तता, बढ़ती प्रौद्योगिकी और सूचना-युग में अपनी खुद की पहचान स्थापित करना और अपनी महत्वाकांक्षाओं को साकार करना आदि-आदि उनके केंद्रीय लक्ष्य थे। नए रोजगार, मीडिया, व्यवसाय, शिक्षा आदि के साथ ही अन्य तरह के अवसरों को हासिल करने में स्त्री की व्यक्तिवादी भावना प्रबल हुई। इसी व्यक्तिवादी भावना का लाभ बहुराष्ट्रीय विज्ञापन कंपनियों को मिला। यहां तक कि इस भावना को और अधिक प्रबल करने में जनमाध्यमों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया।

स्त्रियों का स्व-अस्तित्व या स्व-पहचान स्थापित करने की उत्कंठा को बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने भुनाने का काम किया। नारीवाद की तीसरी धारा का उदय तो इसलिए नहीं हुआ था कि स्त्रियां अपनी देह का नग्न प्रदर्शन करेंगी, बाजार में एक वस्तु के रूप में बिकेगी या उन्हें 'सेक्स ऑब्जेक्ट' के रूप में देखा जाएगा। इस धारा का उदय तो जीवन के क्षेत्र में पुरुष आश्रय से मुक्ति और निज-पहचान स्थापित करने के लिए लक्षित था। लेकिन बाजार का अपना एक चरित्र होता है और उसकी नजर बहुत गहरी होती है। बाजार ने स्त्री-आकांक्षा की इस नब्ज को टटोला तो उसमें उसे अथाह फायदे की गुंजाइश नजर आई। जनमाध्यमों ने इस आकांक्षा को इस रूप में प्रदर्शित करना शुरू किया कि हम ऐसा नहीं दिखाना-पढ़ाना-सुनाना चाहते बल्कि यह दर्शकों/पाठकों की इच्छा और आकांक्षाओं का प्रदर्शन है। इस तरह जन-आकांक्षा और पूंजी की आकांक्षा के सम्मिश्रण ने जनमाध्यमों के जरिए माध्यम साम्राज्यवाद स्थापित किया जिसमें स्त्री की निज-आकांक्षा का सबसे ज्यादा इस्तेमाल हुआ और यह साम्राज्यवादी विस्तार आज भी हो रहा है।

संदर्भ-सूची

1. चतुर्वेदी, जगदीश्वर *माध्यम साम्राज्यवाद*, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००२
2. रॉबर्ट डब्ल्यू मैकचेस्नी, इलेन मिकिसंस दुड, जोन बेलेमी फ़ॉस्टर (संपा.), *पूँजीवाद और सूचना का युग*, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००६
3. इस्सर, देवेन्द्र *स्त्री मुक्ति के प्रश्न*, संवाद प्रकाशन, मेरठ, २००९
4. सिंह, सुधा *ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ*, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००८
5. सिंह, मुरली मनोहर प्रसाद (संपा.) *संचार माध्यम और पूँजीवादी समाज*, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००६
6. जोशी, रामशरण *मीडिया : मिशन से बाजारीकरण तक*, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, २००८
7. खेतान, प्रभा *बाजार के बीच : बाजार के खिलाफ - भूमंडलीकरण और स्त्री के प्रश्न*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली २००७